बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

मधुबाला

बच्चन

आठवाँ संस्करण

सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

प्रकाशक
सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

इस पुस्तक के पहले तीन संस्करण, सुषमा निकुंज, प्रयाग तथा दूसरे तीन संस्करण, भारती भंडार, प्रयाग से प्रकाशित हुए थे।

पहला संस्करण—जनवरी, १९३६
दूसरा संस्करण—नवंबर, १९३८
तीसरा संस्करण—अक्टूबर, १९४०
चौथा संस्करण—फरवरी, १९४३
पाँचवाँ संस्करण—मई, १९४४
छठा संस्करण—जून, १९४६
सातवाँ संस्करण—अगस्त, १९५१
आठवाँ संस्करण—अगस्त, १९५६

मूल्य २)

मुद्रक
माया प्रेस प्राइवेट लि०,
इलाहाबाद—३

सूची

भूमिका

मधुशाला का आठवाँ संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। स्वाभाविक है, इस बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता है। नया संस्करण इस बात का सबूत है कि जनता मेरी यह रचना आज भी पसंद करना चाहती है,

ईर्ष्या रखनेवाले, विरोध करनेवाले जितने लोग पैदा हो जाते हैं उतने किसी और के प्रति नहीं :

'प्रेमियों के प्रति रही है, हाय, कितनी क्रूर दुनिया !' मेरी इन रचनाओं के प्रति भी बड़ा क्रोध-विरोध प्रकट किया गया था। जो जबान चला सकते थे उन्होंने जबान चलाई, जो कलम चला सकते थे उन्होंने क़लम चलाया। किन्हीं लोगों ने गद्य मे, किन्ही ने पद्य में। उनके ऊपर व्यंग्य-काव्य लिखे गए, पैरोडियाँ लिखी गई, एक-एक कविता पर एक-एक नहीं, दो-दो, चार-चार। मेरे एक मित्र का कहना है कि मेरी कविताओं पर जितनी पैरोडियाँ लिखी गई है उतनी हिंदी के शायद ही किसी कवि पर लिखी गई हों। शुरू-शुरू मे इन आक्रमणो से मेरे मन को बड़ी चोट पहुँचती थी। सुना होगा, ऐसे ही कटु-प्रहारों से अग्रेजी कवि कीट्स को तपेदिक हो गया था, जिसने उन्हे असमय ही संसार से उठा लिया।

'इहाँ कुम्हड बतिया कोउ नाही !'

इनके विरुद्ध मेरी प्रतिक्रियाएँ जहा-तहाँ मेरी रचनाओं मे मौजूद है। इनसे मेरे प्रेमी पाठकों को भी दुख होता था। बहुत से मुझे सहानुभूति के पत्र लिखते थे। आज मैं उनसे कह सकता हूँ :

'किंतु अंत में दुनिया हारी
और हमी-तुम जीते !'

एक बात का संतोष मुझे तब भी था। मेरी पुस्तकों की बराबर माँग रहती थी और जब कभी सभा-सम्मेलनों में कविताएँ सुनाता था तो जनता उनमें रस लेती थी, उन पर झूमती थी। कविता से एक माग मैंने हमेशा की है कि वह लिखनेवाले को आनद दे, सुनानेवाले को आनंद दे, सुननेवाले को आनंद दे, पढ़नेवाले को आनंद दे और कविता को आख से नहीं मुँह से पढ़ना चाहिए।

कवि और जनता का संबंध स्वस्थ काव्य के सृजन के लिए अत्यंत

जिन दिनों मैं मधुबाला की कविताएँ लिख रहा था, उन दिनों छाया-वाद के विरोध में प्रगतिवाद की चर्चा यत्र-तत्र सुनाई पड़ने लगी थी। एक प्रगतिशील महोदय ने मुझसे एक दिन कहा, "बच्चन जी, आप जनवादी कविताएँ क्यों नहीं लिखते ?" मैंने कहा, "मैं तो जनवादी कविताएँ ही लिखता हूँ। जनवादी कविता वह है जिसको जनता पढ़े, सुने, अपनाए। काव्य-प्रेमी जनता वाद-विवाद के चक्कर में नहीं पड़ती, यह तो समा-लोचकों के चोचले हैं; वह तो देखती है कि रचना में रस है कि नहीं।" और जिसे प्रगतिवादी युग कहा जाता है उसमें यही कविताएँ सबसे अधिक पढ़ी, सुनी जाती रही हैं।

ख़ैर, मधुबाला के नए पाठक से मैं सिर्फ़ इतना और कहना चाहूँगा कि आपने इस पुस्तक से जो प्रत्याशाएँ की हों वे पूरी हों। अगर इसके पहले आपने 'मधुशाला' नहीं पढ़ी तो पहले उसे पढ़ लीजिए, तब इसे पढ़िए।

अंत में इस पुस्तक का प्रूफ देखने के लिए मैं अपने शिष्य और सहयोगी श्री अजित शंकर चौधरी का आभारी हूँ।

विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली —बच्चन

फलों से लद जाती है। वर्षा आती है और पृथ्वी की हरित राशि को धोकर मरकत की छवि दे जाती है। शरद की चांदनी में प्रति पल्लव चमक-चमक कर कहता है, क्या पृथ्वी की इस विभा पर भी प्रियतम न रीझेगा? हेमंत का समीर मंद हास करता हुआ कह जाता है, इस वसंत में भी न जाने कितने तरु पत्रहीन ही रह गए। इस ग्रीष्म मे भी न जाने कितने फल पकने के पूर्व ही गिर गए। इस वर्षा मे भी न जाने कितनी भूमि प्यासी ही रह गई और इस शरद मे भी न जाने कितने दग्ध स्थल शीतलता से वंचित ही रहे। शिशिर पत्ता-पत्ता तोड़कर गिरा देता है और पृथ्वी फिर से ऋतुराज का नव स्वप्न देखने लगती है!

और, इसी प्रकार मानव भी शीघ्रता के साथ अबाध बचपन की धूलि क्रीड़ा, सरल बाल काल की चपलता और उग्र यौवन की उच्छृंखल-ताओं से अपने जीवन को विकसित करता हुआ शान्त वृद्धावस्था की गंभी-रता को प्राप्त होता है और सांसारिक अनुभवों के भार से लदी हुई अपनी पलकों को सहज ही मूँदकर पूछता है, 'क्या मेरा यथेष्ट विकास हो चुका?' और, उसके हृदय मे ही बैठा हुआ कोई अपने नीरव स्वर मे कह देता है, 'अभी कहाँ!' इसे सुनते ही उसका शरीर फिर से उन्ही धूलि कणों में खेलने लगता है, जहाँ से उसने अपना जीवन प्रारंभ किया था!

प्रति पल परिवर्तन, प्रति पहर परिवर्तन, प्रति दिवस परिवर्तन, प्रति मास परिवर्तन और प्रति वर्ष और प्रति युग और सदा परिवर्तन!

एक दिन उसे भी बतलाया गया था कि परिवर्तन जीवन का चिह्न है। वह इतना ही जानकर संतुष्ट न हुआ। उसने पूछा, 'परिवर्तन जीवन का चिह्न क्यों है?' उत्तर मिला, 'परिवर्तन जीवन का चिह्न इसलिए है कि जीवन अपूर्ण है। जो पूर्ण है उसे परिवर्तन की आवश्यकता नही। समस्त संसार विविध परिवर्तनों मे होता हुआ पूर्णता की ओर जा रहा है।'

मनुष्य के कानों मे इसके बहुत पूर्व कि वह उनको समझ सके, उनकी

में यौवन था ! जलते हुए हृदय की ज्वालाओं से भी निज के अंधकार में यदि कोई मार्ग दिखाई पड़े तो वह उसकी ओर पाव बढ़ाने को तैयार था !

उसके दग्ध हृदय के प्रकाश मे सोने की मधुशाला जगमग उठी, उसने मधुघट से प्यालो मे गिरती मदिरा की 'कल्-कल्, छल्-छल्' सुनी, उसने मधु वितरण करनेवाली मधुबाला के पग-पायलो की 'रुन-झुन्, रुन्-झुन्' सुनी। उसके चारो ओर मधु-गध गमक उठी और पीनेवालो की चहक गु जित हुई। उसने अपने चारो ओर कल्पना का विस्तृत ससार बसा लिया। सुषमा ने अनेक मधुबालाओ के रूप मे मूर्तिमान होकर उसे घेर लिया। उसके हाथो मे जो प्याला आया उस पर न जाने कितने मरकत पात्र निछावर हो सकते थे। उसकी मदिरा माणिक राशि की आभा को भी लज्जित करती थी। उसकी अमूर्त सुगध की तुलना किससे की जाय। सारा दृश्य था अनुपम, अद्वितीय, अलौकिक ! वह उन्मत्त हो उठा। गान करने लगा—मैने अपने स्वप्नो मे अपने अपूर्ण ससार को पूर्ण कर लिया !

हृदय में कोई कह-कह उठता, जिसका स्वप्न इतना उन्मादक है उसकी सत्ता कितनी उन्मादिनी होगी ! पर वह आगे न बढता था। दूर के न जाने कितने स्वप्न निकट पहुँचने पर मृगजल के समान अतर्धान हो चुके थे। वह अपने को स्वप्न मे, भ्रम मे रखकर भी अपने मन के सतोष का भूखा था। उसने कहा था, 'साक़ी, मेरे पास न आना।' वह तो पीने के स्वप्न से ही तृप्त था, वह तो 'प्यासा ही' रहकर 'मस्त' था। वह जानता था कि उसके स्वप्न संसार की वास्तविकता के साथ सहयोग न कर सकेगे। इसलिए पाने के अरमान को ही उसने प्राप्ति-सुख समझ रक्खा था। कहता था, 'पा जाता तब, हाय, न इतनी प्यारी लगती मधुशाला !'

गया। सन्नाटा था! खोज डाला उसने मदिरालय का कोना-कोना। कहाँ गया मधु! कहाँ गई मधुबाला! पागलों की भाँति उसने एक-एक खिड़की, एक-एक दरवाजा एक-एक पर्दा खोज डाला। पर वे कहाँ!

उसे एक पत्र मिला, जिस पर लोहू से लिखा हुआ था, 'हम तुम्हारे योग्य नहीं हो सके, हम अपने को पुन सागर की तरंगो मे विलीन करने जा रहे है! विदा!'

ज़मीन उसके पावो के तले से खिसक गई। यह नहीं हो सकता। केवल उपहास है। वह चिल्लाया, 'मधु रे! मधुबाले!'

कोई नही बोला।

हः हः हः हः ह हा! ह ह ह ह ह हा!!

हँस पड़ी मदिरालय की दीवार की एक-एक ईंट। उस हास्य में कितनी भयंकरता थी, कितना व्यंग था!

उसने फिर पुकारा, 'मधु रे! मधुबाले!'

कोई नही बोला।

बोली कौन, मदिरालय की दीवारें, मदिरालय के दरवाजे, 'ओ कल्पना के पागल!—वे गए!' 'ओ स्वप्नों के अभिमानी!—वे दूर गए!'—वे गए—वे गए—वे गए के स्वर से एक साथ ही जैसे सारा संसार कोलाहल कर उठा। उस समय उसके हृदय की दशा को न कोई जान सकता है, न कोई कह सकता है, न कोई समझ सकता है।

प्रति पल अपने स्वप्न संसार के सामने सत्य संसार को असत्य समझनेवाला अपने सारे स्वप्नों को पल मात्र मे भूल गया। चतुर्दिक अग्नि-ज्वालमाला से घिरे हुए बच्चे के समान वह चीख पड़ा, मै अपने मधु को चाहता हूँ, अपनी मधुबाला को चाहता हूँ, वे जैसे है, मैं उन्हें वैसे ही चाहता हूँ!........पर उत्तर में उसे यही सुन पड़ा—वे गए, वे

होता, यदि उसमे सृष्टि की प्रथम उषा की लाली दी गई होती और उसे नंदन कानन के पारिजात पुष्प समूह की गंध से सुवासित कर दिया गया होता! उसे मधु का प्याला उस समय भी संतुष्ट न कर सकता, यदि वह नभ-नील नीलम से निर्मित होता और उस पर नक्षत्रों से भी अधिक द्युतिमान मणियाँ जडी हुई होती। उसे मधुबाला उस समय भी अपनी ओर आकृष्ट न कर सकती, यदि वह मधुकलश-विभूषित सिंधु-कन्या रंभा की प्रतिमूर्ति ही क्यो न होती—अपने उस काल की संपूर्ण अभिनव विभा के साथ जब वह समुद्र-फेन को फाडकर सुंदरता, सुकुमारता और उन्मत्तता का सदेश देती हुई ऊपर उठी थी!

उसके प्रथम स्वप्न मे सत्ता का विश्वास था। सत्ता की कल्पना कल्पना की सत्ता से कही अधिक वैभवपूर्ण थी। परन्तु, आज वह जानता है कि उसके स्वप्नो का आदि और अत उसके ही अंदर है। इस मिथ्या की मनोमुग्धकारी भूलभुलैया मे उसे क्यो डाल दिया गया है? उसे वह प्यास क्यों दी गई है, जिसकी तृप्ति का साधन कही नही है और जिसका ध्येय उसे केवल प्यासा ही रखना है? वह काल्पनिक नही होना चाहता, वह स्वप्नो का धनी नही होना चाहता, वह कवि नही होना चाहता। वह चाहता है कि उसके ये सपने उसका पिंड छोड दें, जिसमें वह जीवन की वास्तविकता से कुछ अनुराग बढा सके, उनका कुछ मूल्य जान सके, उनका कुछ सम्मान कर सके और उनका कुछ स्वाद ले सके। वह सतत प्रयत्न कर इन स्वप्नो को दूर हटाता है, उनसे निकल भागने का प्रयत्न करता है, पर उनका ऐंद्रजालिक बंधन उसे कही से भी ढीला होता नही प्रतीत होता। वह असमर्थ है, लाचार है, दुखी है, चिंतित है।

उसे जिस मदिरा की प्यास है, उसके अभाव में उसकी तृष्णा उसी-के रक्त को पी रही है, उसकी त्वचा के छिद्र-छिद्र से अपने सूक्ष्म अधरों

उतना ही सत्य है जितना भौतिक। संभवत वह अपने स्वप्नों के जीवन को ही अपने जीवन का मुख्य भाग समझता है और भौतिक जीवन को गौण। देखते नही कि उसका एक हाथ उपवन मे खिली चमेली का हिमकण हार उतार रहा है और दूसरा हाथ भविष्य के तमोमय साम्राज्य मे निर्भीकता के साथ प्रविष्ट होकर उषा की साडी खीच रहा है? देखते नही कि उसका एक कान निर्झरिणी की रागिनी श्रवण कर रहा और दूसरा कान इद्र के अखाडो मे खडे हुए गधर्व, किन्नर और अप्सराओं के आलाप का आनद ले रहा है? देखते नही कि उसकी एक आँख अतीत की दुर्गम सीमाओ का अतिक्रमण कर सृष्टि की प्रथम उषा की लाली से अपनी मदिरा की तुलना कर रही है और दूसरी आँख उस अधकार को भी देख रही है जिसके अदर दिनकर की तमहर किरणे भी किसी समय छिप जाएँगी ?

समझ सकेगा उसे कोई? आज तक ससार ने एक भी कवि को नही समझा। उसकी कविता वह भले ही समझने का दावा करे।

संसार बहुत प्रसन्न हुआ तो कहता है, 'उसे काव्य-प्रतिभा का वरदान है।' यहाँ भी वह भूल करता है। कवित्व दैव का सबसे बडा दड है। न जाने किस महान अपराध के लिए मानव को वह दिया जाता है। वह दूसरे के संसार को ले नही सकता, अपने ससार को पा नही सकता। विधाता जिसको सब प्रकार वंचित करना चाहता है, उसे ही यह दंड देता है।

संसार में फिर भी इस अपराधी की इतनी पूछ क्यों है ?

मधुबाला

मधुवर्षिणि,

मधु बरसाती चल,
बरसाती चल,
बरसाती चल।

झंकृत हों मेरे कानों में,
चंचल, मेरे कर के कंकण,
कटि की किंकिणि,
पग के पायल—
कंचन पायल,
'छन्-छन्' पायल।

मधुवर्षिणि,

मधु बरसाती चल,
बरसाती चल,
बरसाती चल।

मधुबाला

(१)

मैं मधुबाला मधुशाला की,
मैं मधुशाला की मधुबाला!

मैं मधु-विक्रेता की प्यारी,
मधु के घट मुझ पर बलिहारी,
प्यालों की मैं सुषमा सारी,
मेरा रुख देखा करती है
मधु-प्यासे नयनों की माला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(२)

इस नीले अंचल की छाया
में जग-ज्वाला का झुलसाया
आकर शीतल करता काया,
मधु-मरहम का मैं लेपन कर
अच्छा करती उर का छाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(३)

मधुघट ले जब करती नर्तन,
मेरे नूपुर की छूम-छनन
में लय होता जग का क्रंदन,
झूमा करता मानव-जीवन
का क्षण-क्षण बनकर मतवाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(४)

मैं इस आँगन की आकर्षण,
मधु से सिंचित मेरी चितवन,
मेरी वाणी में मधु के कण,

मदमत्त बनाया मैं करती,
यश लूटा करती मधुशाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(५)

था एक समय, थी मधुशाला,
था मिट्टी का घट, था प्याला,
थी, किन्तु, नहीं साकीबाला,
था बैठा ठाला विक्रेता
दे बंद कपाटों पर ताला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(६)

तब इस घर में था तम छाया,
था भय छाया, था भ्रम छाया,
था मातम छाया, गम छाया,
ऊषा का दीप लिए सिर पर
मैं आई करती उजियाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(७)

सोने की मधुशाला चमकी,
माणिक द्युति से मदिरा दमकी,
मधुगंध दिशाओं में गमकी,
चल पड़ा लिए कर में प्याला
प्रत्येक सुरा पीनेवाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(८)

थे मदिरा के मृत-मूक घड़े,
थे मूर्ति सदृश मधुपात्र खड़े,
थे जड़वत् प्याले भूमि पड़े,
जादू के हाथों से छूकर
मैंने इनमें जीवन डाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(९)

मुझको छूकर मधुघट छलके,
प्याले मधु पीने को ललके,
मालिक जागा मलकर पलकें,

अँगड़ाई लेकर उठ बैठी
चिर सुप्त-विमूर्च्छित मधुशाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(१०)

प्याले आए, मैंने आँका,
वातायन से मैंने झाँका,
पीनेवालों का दल बाँका
उत्कंठित स्वर से बोल उठा,
'कर दे पागल, भर दे प्याला!'
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(११)

खुल द्वार गए मदिरालय के,
नारे लगते मेरी जय के,
मिट चिह्न गए चिंता-भय के,
हर ओर मचा है शोर यही,
'ला-ला मदिरा, मदिरा ला-ला!'
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(१२)

हर एक तृप्ति का दास यहाँ,
पर एक बात है खास यहाँ,
पीने से बढ़ती प्यास यहाँ,
सौभाग्य, मगर, मेरा देखो,
देने से बढ़ती है हाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(१३)

चाहे जितनी मैं दूँ हाला,
चाहे जितना तू पी प्याला,
चाहे जितना बन मतवाला,
सुन, भेद बताती हूँ अंतिम,
यह शांत नहीं होगी ज्वाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(१४)

मधु कौन यहाँ पीने आता,
है किसका प्यालों से नाता,
जग देख मुझे है मदमाता,

जिनके चिर तंद्रिल नयनों पर
तनती मैं स्वप्नों का जाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(१२)

यह स्वप्न-विनिर्मित मधुशाला,
यह स्वप्न-रचित मधु का प्याला,
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला,
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोलाभाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

मालिक-मधुशाला

(१)

मैं ही मधुशाला का मालिक,
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

मधुपात्र, सुरा, साक़ी लाया,
प्याली बाँकी-बाँकी लाया,
मदिरालय की झाँकी लाया,

मधुपान करानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(२)

आ देखो मेरी मधुशाला,
साक़ीबालाओं की माला,
मधुमय प्याली, मधुमय प्याला,
मैं इसे सजानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(३)

जब ये मधु पी-पीकर छलकें,
देखो इनकी पुलकित पलकें,
कल कंधों पर चंचल अलकें,
मैं देख जिन्हें मतवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(४)

इनके मदिराभ अधर देखो,
मृदु गान, कमनीय गमन देखो,
कटि-किंकिणि, पद-नूपुर देखो,
मैं मन जो हरनेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(५)

सब चलीं लिए मधुघट देखो,
'झरझर' लहराते पट देखो,
'झिलमिल' हिलते घूंघट देखो,
मैं चित्त चुरानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(६)

वे देतीं प्याले चूम-चूम,
वे बाँट रहीं मधु घूम-घूम,
वे झुक-झुककर, वे झूम-झूम,
मदमत्त बनानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(७)

पीनेवाले हैं बड़े-बड़े,
देखो, पीते कुछ खड़े-खड़े,
कुछ बैठ-बैठ, कुछ पड़े-पड़े,
यह सभा जुटानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(८)

कुछ आते हैं अरमान-भरे,
कुछ जाते हैं एहसान-भरे,
कुछ पीते गर्व-गुमान-भरे,
मन सबका रखनेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(९)

अब चिन्ताओं का भार कहाँ,
अब क्रूर-कठिन संसार कहाँ,
अब कुसमय का अधिकार कहाँ,
भय-शोक भुलानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(१०)

अब ज्ञान कहाँ, अज्ञान कहाँ,
अब पर-अपनों का ध्यान कहाँ,
अब ज्ञानि-दंभ अभिमान कहाँ,
सम भाव बनानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(११)

हो मस्त जिसे होना, आए,
जितने चाहे साथी लाए,
जितनी जी चाहे पी जाए,
'वस' कभी न कहनेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(१२)

आओ सब-के-सब साथ चलें,
सब एक खाक ही के पुतले,
क्या ऊँच-नीच, क्या बुरे-भले,
मैं स्वागत करनेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(१३)

आओ, आओ, मत शरमाओ,
क्या सोच रहे हो? बतलाओ,
है दाम नहीं, मत पछताओ,
मैं मुफ़्त! लुटानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(१४)

मैं पूछ-पूछ मदिरा दूँगा,
आशीष दुआ सबकी लूँगा,
सबको खुश कर मैं खुश हूँगा,
जी खुश कर देनेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

(१५)

कटु जीवन में मधुपान करो,
जग के रोदन में गान करो,
मादकता का सम्मान करो—
यह पाठ पढ़ानेवाला हूँ।
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ!

मधुपायी

(१)

मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

पग-पायल की झनकार हुई,
पीने को एक पुकार हुई,
बस हम दीवानों की टोली
चल देने को तैयार हुई,
मदिरालय के दरवाज़ों पर
आवाज़ लगाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(२)

हमने छोड़ी कर की माला,
पोथी-पत्रा भू पर डाला,
मंदिर-मस्जिद के बंदीगृह
को तोड़, लिया कर में प्याला
औ' दुनिया को आजादी का
संदेश सुनाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(३)

जोगी मोमिन हमसे झगड़ा,
पंडित ने मंत्रों से जकड़ा,
पर हम थे कब रुकनेवाले,
जो पथ पकड़ा, दृढ़ पग पकड़ा,
पथ-भ्रष्ट जगत को मस्ती की
[illegible] राह बताने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(४)

छिपकर सब दिन था जग पीता,
पीता न अगर, कैसे जीता?
जब हम न समझते थे इसको,
वह दिन बीता, वह युग बीता.
साक़ी से मिल मदिरा पीने
अब खुले-खज़ाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(५)

मग में कितने सागर गहरे,
कितने नद-नाले नीर-भरे,
कितने सर, निर्झर, स्रोत मिले,
पर, नहीं कहींपर हम ठहरे;
तेरे लघु प्याले में ही बस
अपनत्व डुबाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(६)

है ज्ञात हमें नश्वर जीवन,
नश्वर इस जगती का क्षण-क्षण,
है, किंतु, अमरता की आशा
करती रहती उर में क्रंदन,
नश्वरता और अमरता का
अब द्वंद्व मिटाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(७)

कल्पित स्वर्गों की छाया
ने विश्व गया है बहकाया,
हम क्यों उसपर विश्वास करें,
जब देख नहीं कोई आया?
अब तो इस पृथ्वी-तल पर ही
भू-स्वर्ग बसाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(८)

हम लाए हैं केवल हस्ती,
ले, साक़ी, दे अपनी मस्ती,
जीवन का सौदा ख़त्म करें,
मिल मुक्ति हमें जाए सस्ती;
साक़ी, तेरे मदिरालय को
अब तीर्थ बनाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(९)

चिरजीवी हो साक़ीवाला!
चिर दिवस जिए मधु का प्याला!
जो मस्त हमें करनेवाली,
आबाद रहे वह मधुशाला!
इतने दिन जो बदनाम रही,
उसका गुण गाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(१०)

दी हाथ खुले तूने हाला,
हम सबने भी जी-भर ढाला,
यह तो अनबूझ पहेली है—
क्यों बुझ न सकी अंतर्ज्वाला?
मदिरालय से पीकर के भी
क्या प्यासे जाने हम आए?
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(११)

कल्पना सुरा औ' साकी है,
पीनेवाला एकाकी है,
यह भेद हमें जब ज्ञात हुआ,
क्या और समझना बाकी है?
जो गाँठ न अब तक सुलझी थी,
उसको सुलझाने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(१२)

यह सपना भी बस दो पल है,
उर की भावुकता का फल है,
भोली मानवता चेत, अरे,
सब धोका है, सारा छल है!
हम बिना पिए भी पछताते,
पीकर पछताने हम आए।
मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए!

(२)

हम सब मधुशाला जाएँगे,
आशा है, मदिरा पाएँगे,
किंतु हलाहल ही यदि होगा
पीने से कब घबराएँगे;
पीनेवाला जिंदावाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदावाद!

(३)

उफ़! कितने इस पथ पर आते,
पहुँच मगर, कितने कम पाते,
है हमको अफ़सोस न इसका,
इसपर जो मरते तर जाते;
मरनेवाला ज़िंदावाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला ज़िंदावाद!

(४)

यह तो दीवानों का दल है,
पीना सब का ध्येय अटल है,
प्राप्त न हो जब तक मधुशाला,
पड़ सकती किसको डर कल है!
वह मधुशाला जिंदाबाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
वह मधुशाला जिंदाबाद!

(५)

झाँक रहा, वह देखो, साक़ी,
कर में एक सुराही बाँकी,
देर किया क्या इतनी आने?
यार लगी गिनने घड़ियाँ भी;
वह मधुशाला जिंदाबाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
वह मधुशाला जिंदाबाद!

(६)

अपना-अपना पात्र सँभालो,
ऊँचे अपने हाथ उठालो,
सात वलाएँ ले मदिरा की,
प्याले अपने होठ लगा लो,
मधु का प्याला ज़िंदाबाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला ज़िंदाबाद!

(७)

प्याले में क्या आई हाला?
नहीं, नहीं, उतरी मधुबाला।
पीकर कैसे यह छवि खो दूँ—
सोच रहा हर पीनेवाला;
मादक हाला ज़िंदाबाद!
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला ज़िंदाबाद!

(८)

जिसमें अन्तर रही मधुशाला,
जिसमें प्रतिबिंबित मधुबाला,
कौन सकेगा पी उस मधु को
कितनी ही हो अंतर्ज्वाला ?
उर की ज्वाला जिंदाबाद !
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
यह मधुशाला जिंदाबाद !

सुराही

(१)

मैं एक सुराही हाला की!
मैं एक सुराही मदिरा की!
मदिरालय हैं मंदिर मेरे,
मदिरा पीनेवाले, चेरे,
पड़े-से मधु-विक्रेता को
जो निशि-दिन रहते हैं घेरे;
है देवदासियों-सी शोभा
मधुबालाओं की माला की!
मैं एक सुराही हाला की!

(४)

सबका सम्मान समान यहाँ,
सबको समान वरदान यहाँ,
मैं शंकर-सी औढर दानी,
है मुक्ति बड़ी आसान यहाँ;
देरी है केवल फिरने की
सबपर मेरी चितवन बाँकी।
मैं एक सुराही मदिरा की!

(५)

इस मंदिर में पूजन मेरा,
अभिवादन-अभिनंदन मेरा,
निज भाग्य सराहा करते सब
पाकर मादक दर्शन मेरा,
जिस तप से यह पदवी पाई
मैंने, कर लो उसकी झाँकी।
मैं एक सुराही हाला की!

(८)

मैं मधु से नहलाई जाती,
फिर प्यालों की माला पाती,
तब मेरे चारों ओर खड़ी
होकर मधुबालाएँ गातीं;
इस भाँति गई है की पूजा
जगती-तल पर किस प्रतिमा की ?
मैं एक सुराही मदिरा की !

(९)

मैं मिट्टी की थी लाल हुई,
मधु पीकर और निहाल हुई,
जब चली मुझे ले मधुबाला,
छलछल करके वाचाल हुई,
जिसको सुनकर पंडित-मुल्ले
भूले सब अपनी चालाकी।
मैं एक सुराही मदिरा की !

(१०)

अब इनकी मिन्नत कौन करे?
इनके शापों से कौन डरे?
जब स्वर्ग लिए मैं फिरती हूँ,
तब कौन क़यामत तक ठहरे?
जो प्राप्य अभी, उसके हित कल
की राह किसीने कब ताकी?
मैं एक सुराही मदिरा की!

(११)

मैं मधुबाला के कंधों पर
उपदेश यही देती चलकर—
'अपने जीवन के क्षण-क्षण को
लो मेरी मादकता से भर;
यह मिलना-जुलना क्षण भर का
फिर जाना सबको एकाकी।'
मैं एक सुराही हाला की!

(१२)

लघु, मानव का कितना जीवन,
फिर क्यों उसपर इतना बंधन;
यदि मदिरा का ही अभिलाषी,
पी सकता कुछ गिनती के कण!
चुल्लू भर में गल सकता है
उसके तन का जामा खाकी।
मैं एक सुराही मदिरा की!

(१३)

मैं हूँ प्यालों में जम जाती,
मधु के वितरण में रम जाती,
भरती अगणित मुख में मदिरा,
अपनी निधि, पर, कब कम पाती;
मैं घूम जिधर पड़ती, उठती
है गूँज उधर ध्वनि 'ला-ला' की।
मैं एक सुराही हाला की!

(१४)

औरों के हित मेरी हस्ती,
औरों के हित मेरी मस्ती,
मैं पीती सिंचित करने को
इन प्यासे प्यालों की बस्ती,
आनंद उठाते थे, अपयश
की भागी बनती मैं, साक़ी।
मैं एक सुराही मदिरा की!

(१५)

उन्मत्त बनाना मेरा नहीं,
मद से भी बुझती प्यास नहीं;
उन नयनों से सिखा मेरा,
यह नहीं सुरा की धार कहीं!
उन के आनन से ही होगी
है शांति हृदय की ज्वाला की।
मैं एक सुराही मदिरा की!

(१६)

तुमने समझा मधुपान किया?
मैंने निज रक्त प्रदान किया!
उर क्रंदन करता था मेरा,
पर मुख से मैंने गान किया!
मैंने पीड़ा को रूप दिया,
जग समझा मैंने कविता की।
मैं एक सुराही मदिरा की!

प्याला

(१)

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

कल काल-रात्रि के अंधकार
में थी मेरी सत्ता विलीन,
इस मूर्तिमान जग में महान
था मैं विलुप्त कल रूप-हीन,

कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़,

म फ़र्क़ वाहरी क्या देखूँ;
मुझको मस्ती से महज काम।
भय-भ्रांति-भरे जग में दोनों
मन को वहलाने के अभिनय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

(१०)

संसृति की नाटकशाला में
है पड़ा तुझे वनना ज्ञानी,
है पड़ा मुझे वनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी;
संघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है,
वह देख, यवनिका गिरती है,
समझा, कुछ अपनी नादानी!
छिप जाएँगे हम दोनों ही
लेकर अपने-अपने आशय।

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

(११)

पल में मृत पीनेवाले के
कर से गिर भू पर आऊँगा,
जिस मिट्टी से था मैं निर्मित
उस मिट्टी में मिल जाऊँगा;
अधिकार नहीं जिन बातों पर,
उन बातों की चिंता करके
अब तक जग ने क्या पाया है,
मैं कर चर्चा, क्या पाऊँगा?
मुझको अपना ही जन्म-निधन
है सृष्टि प्रथम, है अंतिम लय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

म फ़र्क़ बाहरी क्या देखूँ;
मुझको मस्ती मे महज काम।
भय-भ्रांति-भरे जग में दोनों
मन को बहलाने के अभिनय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

(१०)

संसृति की नाटकशाला में
है पड़ा तुझे बनना ज्ञानी,
है पड़ा मुझे बनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी;
संघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है,
वह देख, यवनिका गिरती है,
समझा, कुछ अपनी नादानी!
छिप जाएँगे हम दोनों ही
लेकर अपने-अपने आशय।

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

(११)

पल में मृत पीनेवाले के
कर से गिर भू पर आऊँगा,
जिस मिट्टी से था मैं निर्मित
उस मिट्टी में मिल जाऊँगा;
अधिकार नहीं जिन बातों पर,
उन बातों की चिंता करके
अब तक जग ने क्या पाया है,
मैं कर चर्चा, क्या पाऊँगा?
मुझको अपना ही जन्म-निधन
है सृष्टि प्रथम, है अंतिम लय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

हाला

(१)

उल्लास-चपल, उन्माद-तरल
प्रति पल पागल——मेरा परिचय!

जग न ऊपर की आँखों से
देखा मुझको बस लाल-लाल,
कह डाला मुझको जल्दी से
द्रव माणिक या पिघला प्रवाल,

जिसको साक़ी क अधरों ने
चुंबित करके स्वादिष्ट किया,

चर्चा घर-घर में फैल गई
मिलते हम-तुम, ओ मदमाती!
मिलना हम दोनों का भी तो
है अन्य किसीका ही निर्णय।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(६)

अस्तित्व न था जब तृष्णा का,
मदिरालय था यह विशृंखल,
विक्रेता था मृतप्राय पड़ा,
चं [illegible] की भी थे अविचल,
पता नहीं [illegible] सों का,
जिक्र घटों [illegible] रों का,

तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(७)

पृथ्वी में जितनी प्यास भरी,
बादल में उतना नीर भरा,
तट-अधरों को नीचे रक्खा
है प्याला अंबुधि का गहरा;
यह गुरु-महान की तृष्णा में
छोटों की प्यास नहीं भूला;
सीपों की प्यास बुझाने को
नभ में पत्रों का पात्र बना;
छोटे से छोटे तृण का ही
[illegible] स्थान बना नभ हिमकण-मय।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(८)

निर्मित हो नभ की मदिरा से
[illegible] [illegible] तृप्ति की [illegible],

चर्चा घर-घर में फैल गई
मिलते हम-तुम, जो मदमाती।
मिलना हम दोनों का भी तो
है अन्य किसीका ही निर्णय।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय।

(६)

अस्तित्व न था जब तृष्णा का,
मदिरालय था यह विशृंखल,
विक्रेता था मृतप्राय पड़ा,
चंचल साकी भी थे अविचल,
कुछ पता नहीं था प्यासों का,
क्या जिक्र घटों का, प्यालों का,
इस परी तृषा के आते ही
मच गई परों में चहल-पहल,
है रंगमंच तृष्णा का ही,
जिसपर यह संसृति का अभिनय।

तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(७)

पृथ्वी में जितनी प्यास भरी,
बादल में उतना नीर भरा,
तट-अधरों की नीचे रक्खा
है प्याला अंबुधि का गहरा,
यह गुरु-महान की तृष्णा में
छोटों की प्यास नहीं भूला;
भौंरों की प्यास बुझाने को
तरु में फूलों का पात्र धरा;
छोटे से छोटे तृण का ही
रख ध्यान बना नभ हिमकण-मय।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(८)

[illegible]
[illegible]

तट गिर-गिर पड़ते सागर में,
अलि-अवली रस पी-पी गाती;
जिस-जिस उर में दी प्यास गई,
दी तृप्ति गई उस-उस उर में;
मानव को ही अभिशाप मिला,
'पीकर भी दग्ध रहे छाती!'
किन अपराधों के बदले में
मानव के प्रति यह क्रूर अनय?
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(९)

यह 'क्रूर अनय' सह सकता है
केवल इस बल पर मन मेरा,
इसके कारण ही तो, सुंदरि,
सत्संग मिला मुझको तेरा;
मेरे दामन, तेरे आँचल
की गाँठ लगा दी तृष्णा ने;

उर-कुंड-हवन के ओर सभी
आ, दें मिलकर मंगल फेरा;
कर कौन अलग सकता हमको
हो जाने पर विधिवत् परिणय?
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(१०)

जब मानव का अपनी तृष्णा
से है इतना निज दृढ़ नाता,
तब मैं मदिरा का अभिलाषी
क्यों जग में दोषी कहलाता?
मेरी तृष्णा तो तृप्तिमती
परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा;
मानव अशांति, मानव स्वप्नों
के कारण ही तो है बाधा;
पाऊँगा, जब तक एक नहीं
होकर मिलते सर्व-जगत।

तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

(११)

मैं अर्थ बनाता तृष्णा का,
क्षण बीत रहे हैं जीवन के,
किस-किसका दूर करूँगा मैं,
संदेह यहाँ हैं जन-जन के,
भर दे प्याला, भूले दुनिया,
भूले अपूर्णता दुनिया की,
मतवालों ने कब काम किए
जग में रहकर जग के मन के?
वह मादकता ही क्या जिसमें
बाक़ी रह जाए जग का भय।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय!

स्वयं, लो, प्रकृति उठी है बोल
विदा कर अपना चिर व्रत मौन।
अरे, मिट्टी के पुतलो, आज
सुनो अपने कानों को खोल,
सुरा पी, मद पी, कर मधुपान,
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(२)

यही श्यामल नभ का संदेश
रहा जो तारों के सँग झूम,
यही उज्ज्वल शशि का संदेश
रहा जो भू के कण-कण चूम,
यही मलयानिल का संदेश
रहे जिससे पल्लव-दल डोल,
यही कलि-कुसुमों का संदेश
रहे जो गाँठ सुरभि की खोल,
यही ले-ले उठतीं संदेश
सलिल की सहज हिलोरें लोल;

प्रकृति की प्रतिनिधि बनकर आज
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(३)

अरुण हाला से प्याला पूर्ण
ललकता, उत्सुकता के साथ
निकट आया है तेरे आज
सुकोमल मधुबाला के हाथ;
सुरा-सुषमा का पा यह योग
नहीं यदि पीने का अनुमान,
भले तू कह अपने को मस्त,
कहूँगा मैं तुझको पाषाण;
तुझे लघु मानव की क्या लाज,
नर, मुनि-देवों के मन डोल;
सरलता से संयम को छीन
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(४)

कहीं दुर्लभ देवों का कोप—
कहीं सुमन, कहीं मशाल,

कहीं पर प्रलयकारिणी बाढ़,
कहीं पर सर्वभक्षिणी ज्वाल,
कहीं मानव के अत्याचार,
कहीं दीनों की दैन्य पुकार,
कहीं दुश्चिंताओं के भार
दबा क्रंदन करता संसार;
करें, आओ, मिल हम दो-चार
जगत-कोलाहल में कल्लोल;
दुखों से पागल होकर आज
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(५)

विभाजित करती मानव जाति
धरा पर देशों की दीवार,
जरा ऊपर तो उठकर देख,
वही जीवन है इस-उस पार;
घृणा का देते हैं उपदेश
यहाँ धर्मों के ठेकेदार,

सजग करती जगती को आज
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(७)

हमारा अमर सुखों का स्वप्न,
जगत का, पर, विपरीत विधान,
हमारी इच्छा के प्रतिकूल
पड़ा है आ हमपर अनजान;
झुकाकर इसके आगे शीश
नहीं मानव ने मानी हार;
मिटा सकने में यदि असमर्थ,
भुला सकते हम यह संसार;
हमारी लाचारी की एक
सुरा ही औषध है अनमोल;
लिए निज वाणी में विद्रोह
रही बुलबुल डालों पर बोल!

(८)

जिन्हें जग-जीवन से संतोष,
उन्हें क्यों भाए इसका गान?

जिन्हें जग-जीवन से वैराग्य,
उन्हें क्यों भाए इसकी तान?
हमें जग-जीवन से अनुराग,
हमें जग-जीवन से विद्रोह;
इसे क्या समझेंगे वे लोग,
जिन्हें सीमा-बंधन का मोह;
करे कोई निंदा दिन-रात,
सुयश का पीटे कोई ढोल,
किए कानों को अपने बंद,
रही बुलबुल डालों पर बोल!

चला ज्ञानी देने उपदेश,
न्याय होता है सबके साथ;
समझ लें आँखोंवाले खूब,
नियति की कैसी टेढ़ी चाल;
रँगी अपने लोहू से आज
रही खिल वन में पाटल-माल!

(६)

नयन में पा आँसू की बूँद,
अधर के ऊपर पा मुसकान,
कहो मत इसको, हे संसार,
दुखों का अभिनय लेना मान।
नयन से नीरव जल की धार
ज्वलित उर का प्रायः उपहार,
हँसी से ही होता है व्यक्त
कभी पीड़ित उर का उद्गार;
तप्त आँसू से झुलसे गाल
किए कोई मदिरा से लाल;

खोल दे, कर-पद-बंधन काट,
विश्व-बंदीगृह के सब द्वार;
हृदय के अंदर वह विद्रोह
कि जाए इंद्रासन भी डोल,
हुई बस इतने से लाचार,
नहीं मुँह सकती अपना खोल;
दबा मन का सब क्रोध-विरोध
गई बुलबुल वाचाल निकाल,
मथित उर थामे अपना, हाय,
रही खिल वन में पाटल-माल !

बुलबुल तरु की फुनगी पर से
संदेश सुनाती यौवन का,
तुम देकर मदिरा के प्याले
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा।
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

(२)

जग में रस की नदियाँ बहतीं,
रसना दो बूँदें पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झाँकी
नयनों के आगे आती है,
स्वर-तालमयी वीणा बजती,
मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनों की गंध कहीं
यह वायु उड़ा ले जाती है;

ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये,
ये साधन भी छिन जाएँगे;
तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

(३)

प्याला है, पर पी पाएँगे,
है ज्ञात नहीं इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है,
असमर्थ बना कितना हमको;
कहनेवाले, पर, कहते हैं,
हम कर्मों में स्वाधीन सदा;
करनेवालों की परवशता
है ज्ञात किसे, जितनी हमको;
कह तो सकते हैं, कहकर ही
कुछ दिल हलका कर लेते हैं;

(६)

ऐसा चिर पतझड़ आएगा,
कोयल न कुहुक फिर पाएगी,
बुलबुल न अँधेरे में गा-गा
जीवन की ज्योति जगाएगी,
अगणित मृदु-नव पल्लव के स्वर
मरमर न सुने फिर जाएँगे,
अलि-अवली कलि-दल पर गुंजन
करने के हेतु न आएगी;
जब इतनी रसमय ध्वनियों का
अवसान, प्रिये, हो जाएगा,
तब शुष्क हमारे कंठों का
उद्‌गार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

(७)

सुन काल प्रबल का गुरु गर्जन
निर्झरिणी भूलेगी नर्तन,

निर्झर भूलेगा निज टलमल,
सरिता, अपना 'कलकल' गायन,
वह गायक-नायक सिंधु कहीं
चुप हो छिप जाना चाहेगा,
मुँह खोल खड़े रह जाएँगे
गंधर्व, अप्सरा, किन्नरगण;
संगीत सजीव हुआ जिनमें,
जब मौन वही हो जाएँगे,
तब, प्राण, तुम्हारी तंत्री का
जड़ तार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

(८)

उतरे इन आँखों के आगे
जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली,
सुकुमार लताओं के गहने,

दो दिन में खींची जाएगी
ऊषा की सारी सिंदूरी,
पट इंद्रधनुष का सतरंगा
पाएगा कितने दिन रहने;
जब मूर्तिमती सत्ताओं की
शोभा-सुषमा लुट जाएगी,
तब कवि के कल्पित स्वप्नों का
शृंगार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

(९)

दृग देख जहाँ तक पाते हैं,
तम का सागर लहराता है,
फिर भी उस पार खड़ा कोई
हम सबको खींच बुलाता है;
मैं आज चला, तुम आओगी
कल, परसों सब संगी-साथी,

दुनिया रोती-धोती रहती,
जिसको जाना है, जाता है;
मेरा तो होता मन डग-मग
तट पर के ही हलकोरों से,
जब मैं एकाकी पहुँचूँगा
मँझधार, न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

पाँच पुकार

(१)

गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'पियो, पियो' की वोली !
संकेत किया यह किसने,
यह किसकी भौंहें घूमीं ?
सहसा मधुवालाओं ने
मदभरी सुराही चूमी;
फिर चलीं इन्हें सव लेकर,
होकर प्रतिविंवित इनमें,

गिर-गिर टूटे घट-प्याले,
बुझ दीप गए सब क्षण में;
सब चले किए सिर नीचे
ले अरमानों की झोली;
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'चलो, चलो' की बोली!

पगध्वनि

(१)

पहचानी वह पगध्वनि मेरी,
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

नंदन वन में उगनेवाली
मेंहदी जिन तलवों की लाली
बनकर भू पर आई, आली;
मैं उन तलवों से चिर परिचित,
मैं उन तलवों का चिर ज्ञानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(२)

ऊषा ले अपनी अरुणाई,
ले कर-किरणों की चतुराई,
जिनमें जावक रचने आई,
मैं उन चरणों का चिर प्रेमी,
मैं उन चरणों का चिर ध्यानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(३)

उन मृदु चरणों का चुंबन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर,
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर,
मरुथल मधुवन बन लहराते,
पाषाण पिघल होते पानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(४)

उन चरणों की मंजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रों की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली,

जिसका अवलंबन कर जग ने
मृग-तृष्णा की नगरी जानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(५)

उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण
का अंजित कर मंजित अंजन
खुलते कवि के चिर अंध नयन,
तम से आकर उर से मिलती
स्वप्नों की दुनिया की रानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(६)

उन सुंदर चरणों का अर्चन
करते आँसू से सिंधु-नयन,
पद-रेखा में उच्छ्वास पवन
देता रचना आँचल अपनी
[illegible] [illegible] कहानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

उन चल चरणों की कल छमछम
से ही था निकला नाद प्रथम,
गति में, मादक तालों का क्रम,
निकली स्वर-लय की लहर
जग ने सुख की भाषा मा
वह पगध्वनि मेरी पहचा

(८)

हो शांत, जगत के कोलाहल!
रुक जा, री, जीवन की हलचल!
मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल,
संदेशा नया जो लाई
यह चाल किसी की मस्ता
वह पगध्वनि मेरी पहचा

(९)

किसके तमपूर्ण प्रहर भागे?
किसके चिर सोए दिन जागे?
सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे?

होगी किनके कंपित कर से
इन शुभ चरणों की अगवानी?
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(१०)

बढ़ता जाता घुँघरू का रव;
क्या यह भी हो सकता संभव?
यह जीवन का अनुभव अभिनव;
पद-चाप शीघ्र, पग-नाप शीघ्र,
स्वागत को उठ, रे कवि मानी!
वह पगध्वनि

(१२)

रव गूँजा भू पर, अंबर में,
सर में, सरिता में, सागर में,
प्रत्येक श्वास में, प्रति स्वर में,
किस-किसका आश्रय ले फैलें,
मेरे हाथों की हैरानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(१३)

ये ढूँढ रहे ध्वनि का उद्गम,
मंजीर-मुखर-युत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम,
इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(१४)

ये कर नभ-जल-थल में भटके,
आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग द्वय थे अंदर घट के,

थे ढूंढ़ रहे उनको बाहर
ये युग कर मेरे अज्ञानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

(१५)

उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन
मैं ही इन चरणों में नूपुर,
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी!

आत्म-परिचय

(१)

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ,
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर,
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!

(२)

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ;
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!

(३)

मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
    है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!

फिर मूढ़ न क्या जग, जो इसपर भी सीखे ?
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना !

(७)

मैं और, और, जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता ;
जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता !

(८)

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ;
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खँडहर का भाग लिए फिरता हूँ !

(९)

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना !

(१०)

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!

फिर मूढ़ न क्या जग, जो इसपर भी सीखे ?
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना !

(७)
मैं और, और, जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता ;
जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता !

(८)
मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ;
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खँडहर का भाग लिए फिरता हूँ !

(९)
मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना !

(१०)

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!